अन्तरा-शब्दशक्ति

बदलते अक्स

काव्य संग्रह

श्रीमती किरण मोर

बदलते अक्स

(काव्य संग्रह)

किरण मोर

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

वारासिवनी, मध्यप्रदेश

ISBN- "978-93-5372-001-8"

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

मुख्य कार्यालय - १५ नेहरु चौक वारासिवनी, जिला बालाघाट (म.प्र) ४८१३३१

दूरभाष- (कार्या.) ०७६३३-२५३१५९

(मो) ९४२४७६५२५९

अणुडाक- antrashabdshakti@gmail.com

अंतरताना- www.antrashabdshakti.com

प्रथम संस्करण २०१९- किरण मोर

आवरण चित्र- संदीप सोनी,वारासिवनी

मूल्य - ६०.०० रुपये

मुद्रक- शैलू कम्प्यूटर्स, वारासिवनी

BADALTE AKS BY KIRAN MOR

वैधानिक चेतावनी - इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकापी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम से अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुनरुत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा शब्द शक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई है अतः प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु लेखक जिम्मेदार है। प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र, भाषाशैली एवं स्थान सभी लेखक की कल्पना है। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रमणिका

भूमिका 5

1. ओस की बूंदें 7

2. बिसरे लम्हे 8

3. कुर्सी का अवसाद
9
4. लहू का रंग 10
5. धरोहर 11
6. कौन भ्रष्ट 12
7. कब आओगे तुम 13
8. नया जीवन 14
9. टीस 15
10. थिरकते होंठ 16
11. प्रवाह 17
12. अनुबंध 18
13. भ्रमजाल 19
14. हेरा-फेरी 20
15. दोहरी जिंदगी 21
16. रंग 22
17. सच 23
18. साजिश 24
19. जीवन सरगम 25
20. प्रयास 26
21. भय 27
22. किरदार 28
23. शंखनाद 30
24. धीर धर मन 32

भूमिका

हमारे भारतीय समाज में हमेशा से ही रिश्तों को प्राथमिकता दी गई है और विश्व के किसी भी अन्य देशों में इतने विश्वास और अपनेपन से नहीं निभाये जाते हैं रिश्ते जितने भारत में। रिश्ता चाहे कोई भी हो वह भरोसे और सम्मान और विश्वास पर टिका होता है।

लेकिन नित नव बढ़ते आधुनिकीकरण, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया बढ़ती आबादी, बेरोजगारी और सिर्फ पाने और अपने को दिखाने की होड़। आज इन सब कारणों ने रिश्तों को भी कहीं ताक पर रख दिया है और मानवीयता भी खत्म होती नजर आ रही है और इसी तारतम्य में रिश्तों का स्वरूप भी बदलता नजर आ रहा है। समाज में परिवार में हर जगह रिश्तों की छवि धूमिल हो गई है और टूट रहे हैं और जो निभ रहे हैं वे भी कहीं न कहीं स्वार्थपरक हो रहे हैं।

मेरी कविताओं में रिश्तों के इन्हीं बदले स्वरूपों की विवेचना की गई है। वह रिश्ता कहीं भी कोई भी और किसी भी क्षेत्र से हो सकता है। मां बाप, भाई बहन दोस्त, अपने कार्यक्षेत्र और परिवार कहीं से भी हो सकते हैं। सभी आज अपना स्वरूप खो रहे हैं। यहां तक कि अब तो अपनी परछाईं पर भी से भी विश्वास खोता नजर आता है। और इसी कारण मेरी किताब (कविता संग्रह) का नाम भी "बदलते अक्स" दिया है जो कि मेरी रचनाओं पर बिलकुल सटीक बैठता है।

आप सभी पाठक गणों से आशा है कि आप सब भी इससे अनभिज्ञ नहीं होंगे। और मेरी कविताओं में समाज में घटती रिश्तों की पूंजी का खोते स्वरूप को जानेंगे। और अपनी बहुमूल्य प्रतिक्रिया देंगे।

किरण मोर कटनी म.प्र

ओस की बूंदें

हरे-हरे पात पर नन्ही ओस की बूंदें
चमक रही मोतियों के जैसी
मनोहारी सी
प्रकृति का श्रृंगार किया था जैसे
निशा की शीतलता ने
पहनाई है जैसे जयमाला हरे पत्तों को वरण कर
कहकर ऐसा कि मत जाना हरियाली अब तुम
यहीं ठहर जाना मेरे पास रहेंगे एक दूजे के साथ
इस मानव का क्या भरोसा न रहने दे हमें साथ
कब हरा-भरा ये पेड़ काट दे और
रह जायें न
ये हरे पात
इसी लिए हम कहीं भी रहें हम तुम रहेंगे सदा साथ
तुम चाँद देखकर आया करो और सुबह भले ही चली जाना
सूरज की तेज रोशनी में तुम मुझे दिखाई न दोगी
लेकिन रात करूंगा फिर से मैं तुम्हारे आने का इंतजार
और साथ रहकर बांटेगे तन्हा रहने के सुख-दुख।
प्रति दिन आना तुम मेरे पास
तुम ही तो साथी इक मेरे पास।

बिसरे लम्हे

खामोशी से लिखते जाओ
पन्ने पन्ने अनुभव अपने जीवन के
कुछ सुख कुछ खुशियाँ, और
सर्द आहें कुछ दुख तन मन के।

कुछ चटक रहीं हैं कलियाँ नव
कुछ फूल बन गए मधुबन के
कांटे संग उग आए हैं पास
कोमल हैं कितने पंखुरन के।

कुछ सुखद मिलन की घड़ियां हों
कुछ गीत विरह और सावन के
कुछ प्यार लिखो फटकार भी और
कुछ बंधन लिख दो आंगन के।

रिश्ते नातों की खूबी लिख कर
कुछ धोखे स्वार्थ और अनबन के
लाओ न बदला कुछ मन में
करते जाओ फर्ज तुम करमन के।

सत्कर्मों की गठरी बांधते जाओ
सपने समझो जीवन में अंखियन के
मानव स्वभाव से पुरुषार्थ करो
गांठें खोले जीवन मृत्यु से बंधन के।

कुर्सी का अवसाद

मुरझा कर यूं टूट गई डाली से, होकर जब विलग रही
अति अवसाद हुआ मन को, छाया कोई तब सिर न रही
पतझड़ कब बहार बन आएगी, नवांकुर फूटेंगे दिल में
शायद तब मेरा दर्द कम हो, अभी तो मेरी कोई हस्ती न रही।

कहलाऊंगी तो उसकी ही शाखा, खुश्बू उसकी तन में है बसी
उसके ही नाम जानी जाऊं, बन और किसी होंठों की हंसी
बड़ा पेड़ था कभी कहीं वो, हरियाली फैलाता था चहुंओर
आज काटकर उसका दिल सजा,बना हुआ है नेताजी की कुर्सी

यहां से वहां भटकती हूँ मैं,नित नव का स्वागत करने को
जाने कौन कैसा होगा, आएगा जो, मुझपे बैठकर भरने को
किसकी ठौर पा जाऊंगी, मैं उस पर वो मुझ पर गर्व करे
कुछ कर जाऐंगे हम काम जुदा, जुड़े हों देश पे जो मर मिटने को।

मुझको पाने की खातिर, लड़ मरते हैं सांप नेवले से
मेरा वजूद होकर भी न रहा, मेरे लिए फिरते हैं बावले से
फिर यहां वहां सरकाकर के, कर देते मुझे हैं रिफर कहाँ
फिर बैठ न पाओगे तुम न तुम, भर जाऐ न ये किसी भड़वे से।

कोई मौकापरस्त न आ जाए, छीनकर ले जाये मुझे न कहीं
पाने की पराकाष्ठा सिर जो चढ़ी, शायद न पूरी होगी कभी
इतना न भी भार न डालो मुझपर, एक दिन टूट कर मैं बिखर जाऊँ
क्यों रास नहीं आ रही मिली है, जो तुमको मुफ्त की आजादी।

लहू का रंग

ओज वाले उस लहू का कितना रंग फीका हो गया है

रक्त नलियां भी शुष्क हैं
क्यूँ न अब वह खौलता है,
और न बहता रग-रग में शायद
स्वार्थ नाले पानी सा उसका रंग काला मटमैला हो गया है।
चमकता था लाल सुर्ख गाढ़ा।

अब कहाँ किसी देह में
बहता है शायद पतला मिला
आंखों का पानी मरकर है शायद उस में ही शामिल हो गया है।
अब कहाँ शमशीर वह जो
उस रक्त को बहा सके,
सीना तान रहते थे जो हरदम
ह्रदय की उन रक्त धमनियों में जमकर थक्के सा हो गया है।
है रुकावट के लिए खेद अब
उस जोश में न गूंजता है,
हर कोई अपना था लगता
जलजला मन का वो मैं-मैं की मीठी नींद जाकर सो गया है।
शुद्ध कैसे हो रक्त जबतक
इंसान ही इंसान को खा रहा,
हवाओं में मिल चुके उन कणों से
हर किसी कान तक वो जाकर वो अपना यह संदेशा कह गया है।

धरोहर

कुछ तो हम अपनी धरोहर जग में धर के जायेंगे,
बन सिपाही उनके जरिये, दुख कुछ तो हरते-हरते जायेंगे।

फैले हैं जो अनाचार मिटाने की शायद वो सीख उनसे ले सकें,
दीप जगमगाएंगे सतत वो हमारे नाम कुछ ऐसा करके जाऐंगे।

आंसुओं से लबरेज हैं दुनिया में नैन वो बरसते हुए,
उनके होंठों पर वही फिर सजीली मुस्कराहट भर के जाऐंगे।

लिख जाऐंगे पन्ने-पन्ने पर अपनी लेखनी को एक योद्धा,
हुंकार बनकर देश प्रेम की उठेयूँ सभी के दिलों गुबार भर के जाऐंगे।

जग के इस कैनवास पर से मानवता के रंग जो उधड़ गए
फिर से हम अपनी कलम से वही रंग भर के जाऐंगे।

जगमगाएं चिरकाल तक जो सदा बुझा सके न फिर से कोई
तेल उनके दिल-दियों में हम इतना भर के जाऐंगे।

कौन भ्रष्ट

किस किसको अब भ्रष्ट कहें हम सबसे हुए हैं त्रस्त,
नजर न आए कोई मानव स्वार्थपरता ने किया है पस्त।

क्या नेता क्या पुलिस क्या बाबा क्या चोर और साहूकार
जनता ही है उनके निशाने पर, वही होती उनका शिकार।

घर आकर और हाथ जोड़कर नेता, मांगे हमीं से वोट
कुर्सी पा राजनीति का कोट पहन, हमपर ही करते हैं हर चोट।

कहां गुहार लगायें न्याय की, आज कल वो भी न मिले रुपैया में,
पुलिस की जेबें भर के भी, घर से थाने में करते ता ता थैया हैं।

कहीं पर सुकून नहीं है मुफ्त में, एक बाबा का ऐतबार किया
उसने जमीर तक बेच है खाया, अस्मत को ही तार तार किया।

घर भी सुरक्षित न रह पाए, चोर का ही बोलबाला है
न दिन चैन न रात चैन अब, जीवन का कौन रखवाला है।

अपने में साहूकार बने हैं सब, मानवता का कौन पुजारी है
नर में कहते हैं कि नारायण है, हर एक यहां व्यभिचारी, भ्रष्टाचारी है।

कब आओगे तुम

कहां जा छुपे हो
ढूंढ रही हूं कबसे
दिल पे देके दस्तक
नजर न आए तबसे।

मिलना नहीं था तो
क्यूं दिल क्यूं लगाया
सब्ज बाग दिखाकर
मन था मेरा लुभाया।

कहां गए वो दिन भी
और संग बिताई रातें
की थीं कितनी सारी
प्यार की वो बातें।

जाने कहां गए वो पल
वारिश की वो फुहारें
मदमस्त फिजाओं के
रंगीन थे क्या नजारे।

विरह वियोग कैसा है
दिन रात लगते हैं सम
पलकें रास्ते बिछाई हैं
प्रिये कब आओगे तुम।

कब आओगे तुम।

नया जीवन

नया जीवन
आंखों में कुछ थोड़े से
न ए सपने बस
यही साथ लिए
आई थी तुम्हारे साथ
तुमसे प्रेम की दरकार थी मुझे
तुम होगे मेरे अपने
और क्या चाहिए था मुझे।
जीवन का नया साथी
मेरा हमसफर, मेरे हमकदम
बहुत ही खुशमय थी मैं,
आस्था थी और मेरा प्यार
तुममें ही निहित
पूर्ण विश्वास से भरा।
एक दूजे की परछाईं होकर
रहने का मेरा मन'
कभी साथ न छोड़ने वाली।
इसी तरह निभाएंगे हम
अपना नया रिश्ता।
कुछ नया करने की एक आस,
सच ये हो जाता लेकिन; काश!!

टीस

जज्बातों की दरकन जब टीस दे जाती
पलकों पर अश्कों का सैलाब उमड़ आया
आत्मा पर हथौड़ों के प्रहारों से तन मन जब जख्मी हो जाए
उसकी जलन और चुभन एहसास कराती है तब
उनका होने के कारण समझते भी जब समझ न पाये
और हमारा दर्द सहलाने
उस पर मरहम लगाने कोई न हो,
और हो भी तो अनदेखा कर दे
कितने दिन पालेंगे दुख को, उस जख्म को,
कितने दिनों बैठ सकेंगे उन अपनों के बिना
उनसे दूर जिन्होंने दिया रास्ता
सिर्फ एक अपने को समझाकर उठना
गहरे हो गए जख्मों की वेदना
सहकर भी उन्हें हमें ही माफी देकर
अपनी वही चिरपरिचित
मुस्कान के साथ पुनः अपने
आप को उनके सामने प्रस्तुत होना
अश्कों के सैलाब को पीकर
संतुष्टी से परिपूर्ण चेहरा दिखावटी ही सही
अपनों को हर हाल में खुश रखना
दिल पर जख्म भी हमने खाए
उनको पलटकर देख भी हम ही मुस्कुराए
उनको अंदाजा भी होने दिया
उनका दिया ही दर्द है
अश्कों के सैलाब में डूबकर ऊपर मुस्कुराते ही उतराए।

थिरकते होंठ

तेरे-मेरे बीच प्यार था इतना
क्यूँ कर ये फिर गिले हुए,
दिल में उलझनें उलझ रहीं
फिर भी हैं लब सिले हुए।
नयन भी हुए खामोश क्यों

इशारों में भी न हैं बोलते
क्या कहीं न कहीं दिल हमारे अभी तक हैं मिले हुए।

कहीं ये समझौता तो नहीं
अपने ही से जो हैं कर रहे,
भटक न जाए जिंदगी और
हम कहीं यूंही दरबदर रहे
अरमान दिल में है अभी क्या
जीने की साथ है आरजू
कनखियों से देख यूंही या मन मौन मार मर रहे।

अब अधर थिरकन उठी
शायद ये कुछ कहेंगे अभी
रह न पाऊँ तेरे बिन और
तुझको देखे बिन कभी
उम्मीद थी वह ये कहेगा
तेरा प्यार बस मैं ही हूँ
लेकिन जो तू देकर गया जेहन में कल्पना थी न कभी।

प्रवाह

विचारों से बातों का प्रवाह
चलकर अंतर्मन तक पहुंचा.,
एक कान फिर दूजा, तीजा ऐसे
वह जन-जन तक पहुंचा।
सबने अपने मनोयोग से
मस्तिष्क में कर मंथन
स्व कथनों को उसमें जोड़ा
अपने तथ्य समाहित करते
गति प्रदान कर फिर रुख मोड़ा।

अन्य कानों से होता हुआ
उसका प्रवाह गतिमान हो गया
बात का सारा अर्थ बदला, और
खुद अपना स्वरूप खो गया।
वह मूक दर्शक होकर
मनःस्थिति से स्थिर बनी
उस पर हुए हमले का हादसा
गति पकड़ कर दूर हो गया।

वह सबकी जुबान पर थी लेकिन
उसका जीवन वहीं थम गया,
यही हुआ उस अबोध के साथ
आंखें पथरा गईं, दिल शून्य हो गया।

अनुबंध

भगवान् और इंसान का सदा से ही था
और सदैव अनुबंध रहेगा

ईश्वर ने तो सिर्फ इंसान बनाया
कि सबसे सबका अच्छा संबंध रहेगा

मानव लेकिन सारे जग में आकर
अपने अपने कर्मों से बिखर गए

क्या पता उसे कि मानव को मानव ही
मानने पर दुनिया में प्रतिबंध रहेगा।

एक समय ऐसा आएगा कि यह
एक दूजे के खून का प्यासा रहेगा

इंसा इंसा की बात करें क्या
रिश्तों को निभाने रक्त का भी न संबंध रहेगा।

तेरे-मेरे में ही उलझकर जमीन से
जड़ चेतन का भी न कोई फंद रहेगा।

पर भूल गया मानव ये कि जब
वो बदलना चाहे समय उसका आगाज़ बुलंद रहेगा।

भ्रमजाल

हो रहा मानव मन भ्रमित और
भ्रम में ही सकल संसार है
फैला हुआ दोहरा मापदंड चहुंओर य
हर युग द्विअर्थी बन पड़ा अति सार है
आये समझ न क्या करे इंसान और
जाऐ कहाँ चहुंओर फैलता व्यभिचार है
सबका अपना अर्थ है, और व्याख्या
मनचाहा अपना दे दिया उसका सार है
अपना जहां पर लाभ दिखता और
स्वार्थ सिद्ध हो सकता है
औरों के लिए कोई मोल उसमें, नहीं उसके अनुसार है
आज का हर मानव है बस
अपने लिए ही सोचता
वर्ना तो उसका जगत में आना हुआ बेकार है
हे सृजनकर्ता तुमने जग रचा है
क्यूँ अनेकों भेद में
बसा लिया है सबने उसमें
अपने हिस्से का संसार है
दांव-पेंच चल रहे हैं
पाने-पाने की होड़ है
एक जरा सा कण भी न कोई खोने को तैयार है।

हेरा-फेरी

चिड़िया चुग गई है खेत, फिर पछतायेंगे भी तो,

आये हैं जो दुनिया में वो, एक दिन जायेंगे भी तो,
कर्म किए हैं वही यहां फल, उसका पाएंगे भी तो
करते हुए डरे नहीं तो, अब डर है किसलिए
फल कैसा होगा सोच, फिर घबराऐंगे भी तो, चिड़िया चुग गई है खेत---

जो बन सके न राम तो, रावण भी तो न बन
न बन सका जो कृष्ण , तो कंस भी तो न बन
बन गया कंस, रावण या, शकुनि तू अगर कहीं
राम-कृष्ण आके तुझे कोई, युद्ध में हराऐंगे भी तो, चिड़िया चुग गई है खेत--

दे सके न तू परीक्षा ऐसी, अग्नि से गुजर के
खींच लाए कोई भरी सभा, तुझको बालों से पकड़ के
कोई दुशासन जो चीर तेरा, हरता ही जाएगा बस
भाई बन कृष्ण रक्षा को, तेरी आएंगे भी तो, चिड़िया चुग गई है - - - -

कलयुग की बात करके, न खुद को तसल्ली दे
अपने विवेक से मन को, उजाला तू असली दे
हेराफेरी करके बढ़ चला है, जरा पीछे को झांक ले
सदग्रंथ पढ़ के देख वो, जीवन सबक पढ़ाएंगे भी तो, चिड़िया चुग गई है - - -
अभिमानी दशानन का, क्या हश्र था हुआ
कंस ने भी जी भर, समेटी थी बददुआ
अहम सर चढ़ के बोला, प्रभु का अवतरण हुआ
भरता गया भरता गया, बिन सोचे तू घड़ा
भर के एक दिन पाप से, वो फूट जाऐंगे भी तो
चिड़िया चुग गई है खेतफिर पछतायेंगे भी तो

दोहरी जिंदगी

मुखौटा असली ढ़क करके हम,
जीने को मजबूर हो गये,
गलत क्या, सही है क्या देखें नहीं,
मद में इतना चूर हो गये।

दोहरी जिंदगी सब जी रहे, आज
कहते कुछ हैं, कुछ कर गुजरते हैं,
फितरत ही अब ऐसी हो गई,
हकीकत से मीलों दूर हो गये।

हर इक शख्स ने अपने चेहरे पर,
एक और चेहरा चढ़ाया है,
दिलों में भरके नफरत को,
दोस्ती का हाथ बढ़ाया है।

मुस्कान होंठों पर सजायी है,
दिल में अथाह भरें दर्द हों,
झूठी शान भी दिखलाना है,
सिर पर चाहे लाखों कर्ज़ हों।

ज़िन्दगी क्या है हमारी
दोहरी राहों पर जा रही है,
ठौर क्या हमें मिल पायेगा,
मंजिल भटकती जा रही है।

चेहरे पर बवावटी चेहरा लगा,
स्वयं को ही हैं छल रहे,
असली छवि धूमिल हो गई,
क्यूं हम इस कदर बदल रहे।

रंग

पेड़ों पौधों का रंग एक है, नहीं लाल, पीले और नीले,
फिर क्यूँ हमीं चुभाते हैं,मानवता में जात-पात की कीलें

ईश्वर ने जल एक बनाया, क्यूँ न अलग हैं रंग किए
थल का रूप भी एक ही जैसा, धरती को क्यों न रंग दिए।

हम फिर कैसे भेद बना लेते हैं, इंसान से इंसान अलग करके
फिर भी सिर को ऊँचा रखने, मानवता के दम को हैं भरते।

सूरज सबको रोशनी देता है, हिन्दू मुसलमान या सिक्ख ईसाई
सबको मिलती निशा एक सी, चाँद की शीतलता बराबर पाई।

ईश्वर की दृष्टि में जब हम, सब मानव एक हैं
एक चन्द्र है एक ही सूरज, धरती गगन भी एक है।

स्वार्थ की है सारी दुनिया और स्वार्थ के ही हैं सारे रिश्ते
इसलिए कर डाले हमने, मानव और धर्म के भी हिस्से।

बना दिए हैं सिक्ख, ईसाई, हिन्दू और मुसलमान रे
माने बात धर्म की गर तो, मानवता का धर्म मान रे।

सच

सदियों पहले था वो जमाना
जब सत्य के मद में रहते थे,
सौ की सामने भी वो सच
बेधड़क, बिंदास होके कहते थे।

खो गया है वो आज शायद
झूठ के बाजार की इस भीड़ में
कर गया है पलायन खुद कहीं
आश्रय दे झूठ को अपनी नीड़ में।

कुछ समय की अर्जी मानकर
मौन है बस वह हो गया,
पर समझ बैठे हैं सब कि वह
सदा के लिए ही सो गया।

निकलेगा बाहर अपनी शान से
तब फिर कहर बरपायेगा,
है अजर और वो अमर
जीवन चक्र में साथ चलता जाएगा।

दीर्घायु हो सकता है मगर
एक दिन तो वो दिन आएगा।
जितना ही पाएगा ऊंचाईयाँ
उतना ही सत्य की धरा धंस जाएगा।

साजिश

आकाश परिन्दों की कल-कलरव,शाम ढ़ले न शोर भये।
भ्रष्टाचार की गर्म हवा से,पंख भी उनके हैं जल गये।
पेड़ों पर थे उनके घोंसले,जाने कहाँ वो बिखर गये,
धरती विचरते जीव-जन्तु भी, इनकी ज्वाला भभक रये।

खेत पड़े खलिहान वीराने ,हरियाली खेती कहाँ गई।

चलती स्वछन्द ठंडी बयार भी,भौतिकता की कैद भई।
पर्वत पहाड़ झरने नदिया सब, सूख रहे इनकी गरमी।
वीरान पड़े उपवन हरियाली,सूख गई धरती की नमी।

इनकी कृपा से बाग सलोने,कांटों की अब गैल भये।
इनको रोक सके न कोई,ये अब अड़ियल बैल भये।
रक्तबीज की बूंदों जैसे कितने ये, भ्रष्टाचारी फैल रये।
कुकुरमुत्ता से चाहे जहां जे ,जाने कितने छैल रये।

नित नई रोज साजिशें रचकर,कितने खड़े हैं महल किये।
इनकी साजिशों के साये में,अडिग हिमालय दहल गये।
भ्रष्टाचार की आग है भीषण,हिम पर्वत भी पिघल गये।
इन्सान की क्या औकात है,भगवन भी इसमें झुलस रये।

आकाश गंगा के ग्रह तारे सब,नासा की अब जेल भये।
धरती अंदर के खनिज खजाने,सब ऊपर ई-मेल भये।
प्रकृति में बचा है कुछ, जिसका कविता में उल्लेख बढ़े।
काश्मीर की घाटी भी अब तो,आतंकवाद की भेंट चढ़े।

जीवन सरगम

मिट्टी से बनी देह में चलती ह्रदय की धड़कनें
जिन्दा रहने की अनुभूति कराने वाली
हमारी सांसों की सरगम है
जिन्दगी बहुत ही खूबसूरत
प्रेम का आगाज,
कर्तव्यों की आवाज़,
रोज नई सुबह और रोज नया साज।
जीने का उत्साह रोज नई धुन के साथ।
कभी ऊंची तेज आवाज धमाकेदार,
कभी दुखी आंसू भरी धीमी पड़ती
सांसों की रफ्तार।
सुख दुख के अनुभव,
धूप-छांव से चढ़ाव-उतार
पाने की इच्छा,
खोने का डर,
बढ़ने का हौसला,
कल का इंतजार।
कर्तव्यों की बेड़ी, फर्ज की राह
टूटती सांसों में जीने की चाह।
यही है जिन्दगी
जिसमें एक दिन सांसों की सरगम के साथ
जीवन के तार भी टूट जाते हैं।
मिट्टी से उपजी देह जीकर प्रेम मय वापिस उसी की आगोश में।

प्रयास

कितने भी कर ले कोई प्रयास
कितनी भी दे दो इनको सौगात
कर लें अपने पद की बात
वापिस होती हैं सरकारें
लेकिन, फिर वही ढाक के तीन पात।

चाहे राहुल हों या मोदी
कितनी ही सुविधाएं दे दी
कर ली जज्बातों की बात
वापिस होती हैं सरकारें
लेकिन, फिर वही ढाक के तीन पात।

करना कुछ न ये आगे चाहें
विपक्ष को बस दोषी ठहराएं
उनकी बतलाते वो औकात
वापिस होती हैं सरकारें
लेकिन, फिर वही ढाक के तीन पात।

अब गण अलग और अलग तंत्र है
संविधान में संशोधन का वक्त है
क्योंकि बदल रही हर बात
वापिस होती हैं सरकारें
लेकिन, फिर वही ढाक के तीन पात।

भय

भय के पर्वत खड़े हैं राहों पर तब तुम उनसे टकराओगे ही
और आगे का रास्ता भी बंद नजर आएगा।

लौट आओगे बिना
कार्य किए अपना
हौसला पस्त कर
गमगीन से अनमने से
ये सोचते कि तुम शायद काबिल नहीं।

लेकिन तुम्ही बनाओगे
उन राह के रोड़े बने पर्वतों पर रास्ते
परास्त कर भय को
तुम्हें निर्भय होना है
हौंसले का कर आगाज आगे बढ़ना है,
चाहे कोई तुम्हारे साथ हो न हो।

पहाड़ों को काटकर जलधारा ज्यों फूटती है
धीरे-धीरे ही सही पर्वतों का क्षय करती है।
क्योंकि वह रुकती नहीं
अनवरत लगातार बहती है
बिन रुके दिन रात सिर्फ आगे बढ़ने का लक्ष्य लेकर
अपने गंतव्य की ओर जाने का--
अपने रास्ते स्वयं बनाती अपने प्रियतम से मिलने सागर में समाने।

किरदार

आज हाथों से अचानक शीशा गिरकर टूट गया
उसका हर टुकड़ा अलग अलग
शक्ल में टूटकर गिरा
कुछ बहुत ही छोटे और फिर
शनैः शनैः बड़े होते गए
बिल्कुल मेरे किरदारों की तरह
और उन टुकड़ों में मुझे अभी तक
मेरे निभाये किरदार दिखाई देने लगे।

एक सबसे छोटा सा टुकड़ा जिसे बहुत संभालकर
उठाना पड़ा मेरे जन्म की कहानी कह रहा था
कुछ ही दूरी पर पड़ा उससे थोड़ा सा बड़ा बोला
याद आया पहली बार स्कूल जाना था
विद्यार्थी बनना था और ये सबसे महत्वपूर्ण किरदार था
जो तुम्हारे जीवन की नींव बनने वाला था

उसके बाद जैसे जैसे तुम कदम बढ़ातीं गईं
वैसे वैसे शीशे के टुकड़े
तुम्हारे हर किरदार का अक्स दिखाते गए
चौथा दिखाता पास हुईं थीं
पांचवा बोला लगी नौकरी
और सबसे अहम था वह किरदार तुम्हारे लिए
माता-पिता की जिम्मेदारी

ली थी तुमने अपने नाजुक कंधों पर
फिर उससे भी अहम किरदार
और वो है जब तुम शादी के बंधन में बंध गईं
और इनमें एक और सबसे अहम किरदार जुड़ने वाला था
तुम्हारे जीवन का
मां का किरदार

तुमने उसे भी बखूबी निभाया

अपने बच्चों को संस्कारित कर ऊंची उड़ानें दीं
और उनकी उड़ानों को हौसलों के पंख लगाकर दिए
जिससे आज वे आकाश में विचरते हुए
अपनी सफलता बयान कर रहे हैं

एक और सबसे दुखदायी किरदार निभाना था अभी
जिनकी सफलता का सारा श्रेय तुम्हें मिलना चाहिए था
वो दिखाने वाला शीशे का वह
अंतिम टुकड़ा भी पड़ा है वहीं आसपास
पर उसमें इतनी दरारें पडीं हैं कि
कुछ स्पष्ट दिखाई नहीं दे रहा है
जीवन संध्या की अंतिम बेला का
वो किरदार कुछ अस्पष्ट सा है
कुछ दिखता नहीं कौन सा
किरदार मिलने वाला है अब निभाने को।

शंखनाद

हे शंख चक्र गदाधारी, आओ एक बार फिर से जग में,
शंखनाद करने की घड़ी आई, फिर उठाओ चक्र कर में।

कुरुक्षेत्र नहीं हो अब यहां, हर क्षेत्र अब कुरुक्षेत्र है
हर तरफ मची है महाभारत, पार्थ है न सारथी कृष्ण मित्र है।

न ज्ञान है गीता का कहीं, भीष्म से न योद्धा दिखते हैं
न द्रोण से गुरु अब यहां, अपने पथ से न इक पग डिगते हैं।

अपनों पर शस्त्र उठाने का, तुमने अर्जुन को ज्ञान दिया
अपने पर ही चले हैं अब, सिर पर सबके हीअभिमान जिया।

बन खड़े सारथी दुश्मन हैं, अपनों को ही वो लड़वाते हैं
भाई-भाई की प्रेम खेती में शक का बीज बो जाते हैं।

सिंचित होती है भूमि फिर नफरत के जल के छींटों से
छिन जाते हैं एक दूजे से अपने स्वार्थपरता के इन कीटों से।

उगतीं है बालें खेतों में शत्रुता से भरी गंध लिए
कर में आ जाती तलवारें रक्त की प्यासी जंग लिए।

कर्ण से मित्र मिलते हैं कहाँ मृत्यु पर्यंत मित्रता निभाई थी
दिलों में कसक थी लड़ने की क्योंकि वह धर्म की लड़ाई थी।

भुवन भास्कर को नमस्कार कर युद्ध का आगाज किया जाता
अंत जब संध्या बेला होती तो बंद युद्ध का शंखनाद किया जाता।

नीति नियम लड़ाई वह अद्भुत थी कुरुक्षेत्र बना था धर्मस्थल
पाप की है लड़ाई होती यहाँ भारत हो गया है मरुस्थल।

अब यहां न योद्धा अर्जुन से सारथी बने न कोई कृष्ण यहाँ
दिखलाए कौन है सही मार्ग सब बन हुए हैं मृगतृष्ण यहाँ।

फिर करो शंखनाद हे बनवारी विषाद फैला हुआ चहुँओर है

फेंको चक्र वो अपना चक्रधारी दिख जाए स्वर्णिम भोर है

दिखाओ अपना वो विराट रूप हो रही पाप की अतिवृष्टि
आ जाओ तुम हे मधुसूदन धंसती ही जा रही है सारी सृष्टि।

चल रहा सूर्य का ही शंखनाद न हो रही सांझ की बेला है
न होता युद्ध विराम यहाँ हो गया इंसान अकेला है।

अपने के द्वारा ही अब महफिल में प्रतिपल द्रोपदी एक लाई जाती है
हंसते हैं सब कौरवों सी हंसी अपनों द्वारा अस्मिता लुटाई जाती है।

तब कृष्ण खड़े हुए भाई बनकर ही बने हैं व्यापारी अब भाई
पहले रक्षक होते थे वो अब बने हैं वही तमाशाई।

हे लीलाधर कुछ लीला करो धर्म का बिगुल बजाने आज
युद्ध का अगर आगाज हो तो, संध्या बेला भी हो अंबुज आवाज।

धीर धर मन

जब कभी खिन्न हुआ मन
तो बैठ जाती हूँ अपने घर में
मंदिर के पास - विचलित सी
और कहां जाऊँ मैं
कुछ क्रोध में और कुछ याचक सी बनकर
हो जाती हूँ - मजबूर सी
करती हूं आराधना उनकी,
उनसे शिकायत कर पूछती हूँ ;
मैंने तो कभी भी
किसी के साथ गलत नहीं किया
फिर भी ऐसा क्यूँ मां?
हंसती हूँ एक फीकी सी-हंसीं

सुना था - मैंने "कर भला तो हो भला"
पर मेरा किया भला तो!
मुझे ही चुभता है किसी-भाले सा
किससे कहूँ अपने मन की बात
फिर तुम्हें ही तो मैंने अपना माना है
इसलिए करती हूँ सिर्फ तुम्हारी "आराधना"
तुम्हारा नाम लेकर ही करती हूँ उम्मीद
कि एक दिन सब ठीक हो जाएगा
धीरज का फल मीठा होता है, आखिर।

व्यक्तित्व दर्पण

नाम - श्रीमती किरण मोर
जन्म - 25 नवम्बर 1963
शिक्षा - बी.ए.
पता - मकान नं.9, रघुनाथ गंज वार्ड, कटनी (म.प्र.)
मो. - 8871235407
ई मेल - kiranmor63@gmail.com
विद्या - कविता, गीत, गजल, लेख, लघुकथा आदि।
प्रकाशन - श्रेष्ठ काव्य संगम (सांझा संकलन) में कविता जे.एम.डी पब्लिकेशन
शुभ प्रथात पत्रिका (सांझा संग्रह) दैनिक भास्कर और लोकजंग मे
भी भोपाल से प्रसारित पत्रिका में
सृजन समीक्षा (कविता संग्रह)
सपनों का भंवर (कविता संग्रह) अंतरा प्रकाशन
संस्कारों का हवनकुण्ड (आलेख संग्रह)अंतरा प्रकाशन
सम्मान - अंतरा शब्दशक्ति सम्मान 2019

यदि आप अंग्रेजी में हस्ताक्षर करते हैं तो निवेदन है कि 'हिन्दी में हस्ताक्षर करें', आपकी यह छोटी-सी कोशिश हिन्दी को राजभाषा से राष्ट्रभाषा बनाने में अमूल्य योगदान देगी ।

अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
१५, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी,
जि. बालाघाट (म.प्र.) पिन ४८१३३१,
संपर्क- ९४२४७६५२५९,
अणुडाक: antrashabdshakti@gmail.com
978-93-5372-001-8
मूल्य- 60/-